**SHODH SAMAGAM**

**ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)**

# 21वीं सदी में उभरते नारी सशक्तिकरण के बदलते स्वरूप

**प्रियंका कुमारी,** शोधार्थी, सामाजशास्त्र विभाग,
राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, लल्की घाटी, रामगढ़, झारखंड, भारत

**ORIGINAL ARTICLE**

**Corresponding Author**

**प्रियंका कुमारी,** शोधार्थी, सामाजशास्त्र विभाग,
राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, लल्की घाटी,
रामगढ़, झारखंड, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 18/01/2022
Revised on : -----
Accepted on : 25/01/2022
Plagiarism : 01% on 18/01/2022

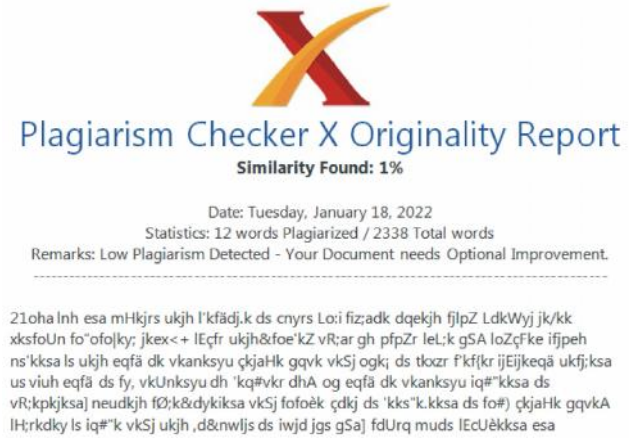

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

Date: Tuesday, January 18, 2022
Statistics: 12 words Plagiarized / 2338 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

21oha lnh esa mHkjrs ukjh l'kfädj.k ds cnyrs Lo:i fiz;adk dqekjh fjlpZ LdkWyj jk/kk xksfoUn fo"ofo|ky; jkex<+ lEçfr ukjh&foe'kZ vR;ar gh pfpZr leL;k gSA loZçFke ifjpeh ns'kksa ls ukjh eqfä dk vkanksyu çkjaHk gqvk vkSj ogk; ds tkozr f'kf{kr ijEijkeqä ukfj;ksa us viuh eqfä ds fy, vkUnksyu dh 'kq#vkr dhA og eqfä dk vkanksyu iq#"kksa ds vR;kpkjksa] neudkjh fØ;k&dykiksa vkSj fofoèk çdkj ds 'kks"k.kksa ds fo#) çkjaHk gqvkA lH;rkdky ls iq#"k vkSj ukjh ,d&nwljs ds iwjd jgs gSa] fdUrq muds lEcUèkksa esa

## शोध सार

*प्रस्तुत शोध लेख में नारी–सशक्तिकरण की समस्याओं पर एक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य नारी–सशक्तिकरण के बदलते स्वरूप को दिखाया गया है, जिसके अन्तर्गत नारी–मुक्ति की शुरूआत, नारी और पुरूषों के संबंधों, नारियों के दुर्बलताओं, निर्भरता और चरित्र की सुरक्षा के बारे में एक अध्ययन है। अशिक्षा रूढ़िवादिता, पुरूषों द्वारा अत्याचार, सामाजिक शोषण एवं जटिलता इत्यादि ने नारी को पीछे रखा। परन्तु 20वीं शताब्दी के मध्य आते–आते शिक्षा एवं राजनीतिक चेतना ने युरोप एवं सम्पूर्ण भारत में जागरण पैदा किया। नारी आन्दोलन, स्वतंत्रता, नारीवाद ने नारी सशक्तिकरण के रूप में लाया।*

*वर्तमान दौर में नारी समाज के हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही है। समाज में उनके उचित सम्मान दिया जा रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, शासन, विज्ञान, कला इत्यादि हर एक क्षेत्र में नारी अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा रही है।*

*परम्परा एवं आधुनिक भावबोध ने इस संकीर्ण और विषम अनुप्रयोग का प्रभाव नारीवाद पर पड़ा और इसका एक ही इलाज शिक्षा के रूप में देखा गया। शिक्षा ही नारी को उचित स्थान दिलाकर एक समृद्ध समाज का सृजन कर सकती है।*

## मुख्य शब्द

**परम्परागत, रूढ़ियों, सशक्तिकरण, स्त्री–विमर्श, अस्तित्व, नारीवाद.**

सम्प्रति नारी–विमर्श अत्यंत ही चर्चित समस्या है। सर्वप्रथम परिचमी देशों से नारी मुक्ति का आंदोलन प्रारंभ हुआ और वहाँ के जाग्रत शिक्षित परम्परामुक्त नारियों ने अपनी मुक्ति के लिए आन्दोलन की शुरुआत की। वह मुक्ति का आंदोलन पुरुषों के अत्याचारों, दमनकारी

क्रिया–कलापों और विविध प्रकार के शोषणों के विरुद्ध प्रारंभ हुआ। सभ्यताकाल से पुरुष और नारी एक–दूसरे के पूरक रहे हैं, किन्तु उनके सम्बन्धों में उतार–चढ़ाव होता रहा है। नारियों ने शारीरिक दुर्बलताओं, आर्थिक निर्भरता और चरित्र की सुरक्षा के भय से आक्रांत होकर पुरुषों के संरक्षण को ही स्वीकार किया। शारीरिक और भावात्मक दोनों दृष्टियों से नारियों की निर्भरता पुरुषों पर रही है। अशिक्षा और सामाजिक रूढ़ियों ने स्त्रियों को पर्दे के पीछे रखा। पुरुषों ने तरह–तरह के अत्याचारों से नारियों का शोषण किया। चाहे यौन शोषण हो, श्रम शोषण हो अथवा आर्थिक शोषण हो, भारत की नारियाँ उपभोग्य बनकर रह गयीं। वे आजीवन विधवा बनकर रहती रही हैं अथवा सती प्रथा का शिकार होकर अकाल मृत्यु को पाती रही हैं। धार्मिक आडंबरों में बंधकर या सामाजिक दूषित रूढ़ियों में जकड़कर उनका जीवन दयनीय रहा है। अवांछित विवाह की विवशता और स्वयं जीवन साथी के चुनाव नहीं करने की विकल्पहीनता ने नारियों को अनमेल विवाह की त्रासदी से ग्रसित रखा। वेश्यावृत्ति, बलात्कार, अपहरण और पुरुष की हिंसात्मक प्रवृत्तियों ने उन्हें लाचार कर रखा। दहेज–प्रथा, भ्रूण–हत्यायें और अकारण तलाक की मजबूरियों से भी इन्हें गुजरना पड़ता है। 20वीं शताब्दी के मध्य तक आते–आते शिक्षा और राजनीतिक चेतना ने भारत की पढ़ी–लिखी स्त्रियों में जागरण पैदा किया। यूरोप की तरह ही भारत में नारीवाद का प्रचार–प्रसार होने लगा और स्वतंत्रता के बाद वह नारी आंदोलन बढ़कर नारी सशक्तिकरण के रूप में प्रकट हुआ। सशक्तिकरण का अर्थ ही होता है नारियों का हर क्षेत्र में दबदबा। पुरुषों के समकक्ष और समानांतर खड़ा होने की क्षमता, उनकी तरह की आक्रमकता, स्वयं की सुरक्षा का विश्वास, शिक्षा का उन्नयन, रूढ़ियों की वर्जना, अधिकार की माँगें। हर क्षेत्र में पुरुषों की तरह दायित्व निर्वाह का सामर्थ्य, राजनीति में प्रवेश, प्रशासनिक कार्य–कुशलता, ज्ञान, विज्ञान, चिकित्सा और यहाँ तक की देश की सुरक्षा करने वाले तरह–तरह के सैनिकों में सम्मिलित होने का साहस, आर्थिक आत्मनिर्भरता, प्रेम–विवाह का आग्रह और आकांक्षा, अविवाहित रहकर जीवन–यापन करने का दुस्साहस, विवाहेत्तर यौन सम्बन्धों की अवर्जना के भाव, लीव–इन–रिलेशनशिप को स्वीकृति, अविवाहित मातृत्व और पति से भिन्न प्रेम सम्बन्धों की आकांक्षा, पुरुष की तरह ही उन्मुक्त सेक्स की गतिविधियाँ।

उक्त प्रवृत्तियाँ मुख्यतः पाश्चात्य नारियों के परिप्रेक्ष्य में देखी गई हैं, किन्तु न्यूनाधिक रूप से ये प्रवृत्तियाँ आज की भारतीय नारियों में भी (भले ही उनका प्रतिशत कम है) देखी जाती हैं। महानगरों में रहने वाली कुलीन स्त्रियाँ, नव धनाढ्यों के घर की युवतियाँ, नौकरी करने वाली स्त्रियाँ दूर प्रवास में रहकर विविध पेशे की रमणियाँ, शिक्षा अथवा नौकरी के लिए विदेश में जाने वाली औरतें अथवा सेक्स वर्कर्स नारियाँ आदि उन्मुक्त जीवन की भोक्ता होती हैं। यह कितना उचित है अथवा अनुचित, इस पर ही विचार करना 'नारी–विमर्श' कहलाता है। पुरुष साहित्यकारों ने और राजनीतिज्ञों ने नारी–विमर्श को अपनी दृष्टि से देखा और सोचा है। लेखिकाओं ने किस ढंग से इस पर विचार किया है वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। जिस तरह, दलित साहित्य रचने वाले यह कहते हैं कि गैर–दलित साहित्यकार सही ढंग से दलित साहित्य की रचना नहीं कर सकते हैं क्योंकि उनके पास अनुभव की प्रामाणिकता नहीं है, उसी तरह नारी–विमर्श पर नारी, लेखिकाओं के विचार अपेक्षित हैं। मूल विषय पर विचार करने के पहले कतिपय आधुनिक एवं अत्याधुनिक लेखिकाओं के विचारों को उद्धृत करने का लोभ, संवरण नहीं कर पा रही है।

पटना से निकलने वाली त्रैमासिक पत्रिका साहिती सारिका (जुलाई, सितम्बर 2008) के द्वितीय अंक में स्त्री–विमर्श पर परिचर्चा प्रकाशित की गयी है। संपादक श्री सलिल सुधारक ने परिचर्चा की भूमिका देते हुए लिखा है।

सीमोन द बोआर के सेकेंड सेक्स से लेकर आज तक स्त्री मुक्ति विभिन्न तरह के वादों–विवादों, आंदोलनों के चलते चर्चा के केन्द्र में रही है। चाहे वे यूरोपीय देश हों या एशियाई देश। वूमेन लीव का भी एक लंबा दौर चला है जो मौजूदा दौरे तक आते–जाते स्त्री–विमर्श के आवरण में लिपट कर समकालीन साहित्य को चिंता का केन्द्र बना हुआ है। ''इस पूरे मसले को लेकर तरह–तरह की धारणायें, अवधारणायें बनी हुई हैं। इसी संदर्भ में प्रसिद्ध लेखिका चित्रा मुद्गल का कहना है।'' आज 25 प्रतिशत महिलायें शिक्षा प्रसार के चलते वर्जित रोजगार यथा, पुलिस, न्यायालय, न्यायपालिका, विज्ञान आदि क्षेत्रों में जागरूकता के बल पर स्वावलंबन ग्रहण कर पुरुषों के

मुकाबले काम कर रही हैं और पुरुषों की तरह ही आत्म निर्भर बनकर अपनी एक पहचान बना रही हैं। इधर महिलाओं को लोकसभा में 33 प्रतिशत आरक्षण देने की बात चल रही है और उन्हें पंचायती राज में 50 प्रतिशत आरक्षण मिल चुका है। महिलाएँ आज जिला परिषद् अध्यक्ष, मुखिया, सरपंच, पंच जैसे पदों पर बैठी हुई है, उनमें आत्मविश्वास भरा है।

किन्तु इनकी दृष्टि में प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में विज्ञान हेतु नारियों के अर्धनग्न अथवा स्वल्प पोशाक जैसी तस्वीरें विज्ञापन के लिए दी जा रही हैं। एक तरह से यह सब कुछ आपराधिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने वाले हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में चर्चित जयती रंगनाथन का कहना है – ''स्त्री–विमर्श को सामाजिक विमर्श का नाम देना होगा क्योंकि स्त्रियाँ समाज से अलग नहीं हैं और अलग होकर जीने की जरूरत भी नहीं है।'' किन्तु ऐसा कैसे हो सकता है कि ''सेक्सुअल एक्ट में पुरुष को ही आनंद की अनुभूति हो, स्त्री को नहीं। अपनी देह का आनंद स्त्री उन्मुक्त होकर क्यों नहीं ले सकती? क्या इस पर विजय पाये बिना किसी भी विमर्श की बात की जा सकती है?''

''स्त्री–विमर्श कलम और कुदाल के बहाने की प्रसिद्ध पत्रकार और उपन्यासकार रमणिका गुप्ता ने तो बहुत नारी–विमर्श पर लिखा है– दरअसल स्त्री मुक्ति का अर्थ है परंपरायें प्रतिबंध या प्रथाएं, जो समाज, पुरुष–सत्ता या धर्म थोप रखी है, ये मुक्त होकर एक मनुष्य की तरह आचरण निर्णय लेने की स्वतंत्रता ।.....मुक्ति का अर्थ है कि हम किसी में मर्जी से या जबरन या अज्ञानता के कारण बंधे है, उसने होना।'' वे अत्यंत ही क्षुब्ध होकर लिखती है– समाज ने स्त्री के दो भागों में बांट दिया है। स्त्री की देह का ऊपरी हिस्सा सुंदर है। दूसरा पेट के नीचे का हिस्सा अश्लील व गोपनीय माना जाता स्त्रियों को इसी हिस्से के कारण हीन ही नहीं, वर्जित भी माना गया यह सोच या अवधारणा हमारे मध्यम वर्गीय समाज के संदर्भ में हद तक सही है। सारे भक्त व सत कवि, गुरु महात्मा स्त्री को इसी हिस्से के कारण वर्जित मानते हैं। कबीर तो उसे नरक कुण्डश् बताते हैं। इनकी दृष्टि में इज्जत की झूठी चादर से मुक्त होकर नारिये अपनी अस्मिता का आकाश निर्मित करना होगा। यह विमर्श अभी सिर्फ मध्यम वर्गीय समाज के इर्द–गिर्द ही घूम रहा है, न कि सर्वहर स्त्रियों और दलित आदिवासियों पर। जब स्त्रियाँ खुद से मुक्त होने और उनकी गुलामी मानसिकता नहीं बचेगी तभी स्त्री–विमर्श जमीन पर घटेगा।

दूसरी ओर उषा महाजन जैसी लेखिका का कहना है भारत में नारीवाद भले ही पश्चिमी देशों से प्रेरित प्रभावित हो, पर दोनो मूल उद्देश्यों में बहुत फर्क है। छठे और सातवें दशक के बीच अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देशों में रेडिकल फेमिनिस्ट (उग्र–नारीवाद) विवाह की अवधारणा और पूंजीवादी संस्कृति के खिलाफ बिगुल बजाया। विवाह को उन्होंने संवैधानिक बलात्कार कहा है। समलैंगिकता और नजायज बच्चे पैदा करने को जायज माना है। विवाह पूर्व व विवाहेतर यौन–सम्बन्धों, उन्मुक्त सेक्स को सही ठहराया। किन्तु हमारे यहाँ महिलाओं की माँग यही है कि घर के मोला और घर से बाहर उन पर हिंसा न हो। उनके साथ समानता, सम्मान का व्यवहार हो, वे अपने जीवन का निर्णय स्वयं ले सके।

डॉ. मंजू सिन्हा (बिहार वि. वि. स्नातकोत्तर विभाग की प्राध्यापिका) दूसरे ढंग से विचार करती है – खाना बनाना, घर की देखभाल करना, बच्चों के कपड़े धोना, गृहस्थी का अन्य बातों के लिए भागदौड़ करने को शोषण नहीं मानना चाहिए। इसे समानता से भी नहीं जोड़ा जाना चाहिए, लेकिन दहेज की समस्या से मुक्ति आदरणीय है।

स्त्रियाँ संगठित होकर अपना अधिकार प्राप्त कर सकती है। स्त्री–विमर्श अहिंसात्मक आंदोलन है, सत्ता अधिकार माँग करता है। यौन उत्पीड़न, दहेज–बलि कन्या भ्रूण हत्या द्वारा स्त्रियों योयम नागरिक सिद्ध किया जा है। आपराधिक मुक्ति लिए आर्थिक स्वतंत्रता, बाजारवाद, खुली अर्थव्यवस्था, स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों समीकरण स्पष्ट हुआ। दशक भूमंडलीकरण के कारण बाजारवाद का आविर्भाव हुआ, इसने व्यापारिक प्रतिष्ठानों में सुंदर कामकाजी महिलाओं उपयोग करना किया। स्त्री–विमर्श पर विचार करते हुए लेखिका मुख्यतः कवयित्री, कुसुम का कहना कि आज स्त्रियों की स्थिति एवं मानसिकता में परिवर्तन हुआ है। संविधान अंतर्गत उसे सम्मान मिला, विकास का मिला, स्वतंत्रता मिली और स्वतंत्र पहचान मिली। घर बाहर दुनियाँ में उसने कदम रखा।

हिन्दी अंग्रेजी लेखन वाली उत्तराखण्ड लेखिका किरण अग्रवाल की दृष्टि स्त्री–विमर्श नाम एक साहित्यिक

पुस्तक है जो कि सिर्फ यौन शोषण, श्रम शोषण और भावनात्मक शोषण पर आधारित है।

उत्तर स्त्री–विमर्श विषयक लेखक लिखती है कि आज विभिन्न कुप्रथाओं से निकलकर विधवा–विवाह, प्रेम–विवाह और अंतर्जातीय विवाह प्रोत्साहन की अपेक्षा हैं। दूसरी तरफ प्रसिद्ध लेखिका सुधा अरोड़ा कहना स्त्री–मुक्ति आयात आजादी पहले सुधारवादी आंदोलन होते रहे, महात्मा गाँधी, राजा मोहन ज्योतिबा फुले, साहेब अंबेडकर, सावित्री बंगाल ज्योतिर्मयी देवी काश्मीर मललदह, मीराबाई, सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा प्राध्यापिका डॉ. गीता के अनुसार स्त्री–विमर्श में स्त्री पीड़ा के साथ–साथ सशक्तिकरण की पुरजोर कोशिश होनी चाहिए। कुछ लोग स्त्री–विमर्श की पैरोकार तोड़क मानते है, लेकिन अधूरी सच्चाई है। अगर परिवार के बीच हुए सहयोग अस्तित्व सुदृढ़ से कायम रख सकती तो कभी परिवार को सुरक्षित सीमा का अतिक्रमण नहीं करेंगी। इनका विश्वास कि नारी अस्मिता की लड़ाई जीत में कार्यान्वित अर्थान्वित करने के लिए आर्थिक मुक्ति और शिक्षा अनिवार्य माना है।

इन नीतिदीर्घ विश्लेषण यह स्पष्ट हो जाता आज महिला रचनाकारों एक बड़ी जमात लिख रही है। अपनी समस्याओं स्वतंत्रता बाद की उपन्यास–लेखिकाओं की पृष्ठभूमि में कृष्णा सोवती, शिवानी और मृणाल पाण्डेय की अहम् भूमिका है। कृष्णा सोवती तो 'मित्रों–मरजानी', पिछड़ी सरगम, दिलोदानिता यारों के तीन पहाड़, सूरजमुखी अंधेरे जैसे उपन्यासों नारी श्रम शोषण, यौन–शोषण भावनात्मक शोषण चित्रण खुलकर किया है। मित्रो मरजानी द्वारा उन्मुक्त यौन पिपासा का वर्णन है। हिन्दी के लेखिकाओं अमृता प्रितम (पंजाबी), अरूंधती राय (अंग्रेजी), महाश्वेता देवी, आशापूर्णा तथा तसलीमा नसरीन (बंगला) आदि स्त्री–विमर्श को उपन्यासों केन्द्र रखा और विविध स्थितियों पर प्रकाश डाला है। पुष्पा कही इश्वरी फाग, कस्तूरी कुंडल बसै, गुड़िया भीतर गुड़िया, अलमा–कबूतरी, चाक झूला नट, उपन्यासों में नारी विमर्श को कई से अभिव्यंजित किया है। उषा प्रियंवदा 'पचपन खंभे', दीवारे, रुकोगी नहीं राधिका शेषयात्रा में, अलका सरावली ने एक ब्रेक कोई बात नहीं तथा शेष कादम्बरी जैसे उपन्यासों नारी के जीवन संघर्ष चित्रित किया। समर्थ लेखिका प्रभा खेतान छिन्नमस्ता और अन्या–अनन्या उपन्यासों बहुत ही प्रभावशाली ढंग नारी मुक्ति समर्थन किया। क्षमा के मोबाइल अनामिका के द्वारे आदि औपन्यासिक कृतियों स्त्री–विमर्श को चित्रित किया है। मेहरूनिसा परवेज, सुधा अरोड़ा, ममता कालिया, नमिता सिंह आदि लेखिकायें स्त्री विमर्श को ध्यान मे रखकर उपन्यास लिख रही हैं।

वर्तमान में स्त्री–विमर्श पर विविध भाषाओं में अनेक महत्वपूर्ण रचनायें उपलब्ध हैं यथा, मेरी वोल्स्टनक्राप्ट (अनु. मीनाक्षी) स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन, जॉन स्टुअर्ट मिल (अनु. प्रगति सक्सेना) स्त्रियों की पराधीनता, जर्मेन ग्रीयर (अनु. मधु बी. जोशी) 'बधिया स्त्री' प्रभा खेतान उपनिवेश में स्त्री राजेन्द्र यादव, अभय दुबे, पितृसत्ता के नये रूप–राजेन्द्र यादव, आदमी की निगाह में औरत औरतः उत्तरकथा अर्चना वर्मा– अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, अरविन्द जैन– न्याय क्षेत्र अन्यायक्षेत्र मृणाल पाण्डे, क्षमा शर्मा बन्द गलियों के विरुद्ध महिला पत्रकारिता की यात्रा, रेखा कस्तवार – स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, ममता जेतली – श्री प्रकाश शर्मा – आधी आबादी का संघर्ष, क्षमा शर्मा– स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, सुमन कृष्णकांत इक्कीसवीं सदी की ओर इत्यादि ।

उपर्युक्त विवेचनाओं से स्पष्ट है कि आज पूरा भारतीय समाज नारी जगत् के वर्तमान स्थिति के प्रति चिंतित है। इसकी प्रतिक्रिया, विशेष रूप से नारियों की प्रतिक्रिया, मौजूदा हालात में एक गहन विमर्श की अपेक्षा रखता है। आजादी के बाद उभरनेवाली महिला साहित्यकारों ने नारी की आवाज अंदाज और अधिकार पर अत्याधिक मुखर स्वर में लेखन किया। इस संदर्भ का समग्र लेखन उल्लेखनीय एवं शोधपरक है।

हम जानते हैं कि आजादी ने हमें जनतांत्रिक व्यवस्था दी है और शिक्षा ने नागरिक समाज। नागरिक समाज का वास्तविक अर्थ एक ऐसा समाज बनाना है, जहाँ सामाजिक व्यवस्था का आधार बल न होकर, सहमति हो। राज्य और उसकी शक्ति के बिना नागरिक संगठित होकर स्वप्रेरणा और सौहार्द से विकासात्मक कार्यों में भागीदारी निभाते हैं। यह कल्पना सिर्फ एन. जी. ओ. या वाल्यूनटरी आर्गेनाइजेशन (स्वैच्छिक संगठनों) तक के लिए ही नहीं, प्रत्युत्त संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में पुरुष और स्त्री दोनों का समान रूप से यह दायित्व है कि वे इस व्यवस्था के पालक

और सहभागी बने।

## निष्कर्ष

कहा जाता है कि आचरण के बिना दर्शन, सिद्धांत, राजनीति और मानवता के बिना विज्ञान त्याज्य है। ठीक उसी कोई भी वाद, चाहे वह नारीवाद ही क्यूँ न हो, उसे भी नीति सम्मति से बढ़ना होगा। कभी–कभी अस्तित्व को बचाते–बचाते आवाज अहंवादी हो जाती है। समस्त सामाजिक तनावों एवं को समाप्त करने के लिए शिक्षा के बिखरते सूत्रों को सुगठित का की जरूरत है। क्योंकि शिक्षा विशाल सामाजिक व्यवस्था की उप–व्यवस्था है। यह समाज के संस्कार, विचार और व्यवहार व्यवस्था मानी जाती है। यह समाज रूपी शरीर का हृदय है, यदि व्यावसायिक दौरे के कारण व्याधिग्रस्त हो जाए तो समाज सैद्धांतिक रूप से रोगग्रस्त हो जाता है। वर्तमान दौर में समाज में एक व्याधि फैल गई है। यह व्याधि परंपरा और आधुनिक भावबोध का संकीर्ण और विषम अनुप्रयोग का इस व्याधि का जबरदस्त प्रभाव नारीवाद के समर्थकों पर भी देख गया है। समर्थकों, विशेष रूप से नारी वर्ग, नारी के बुद्धिजीवी वर्ग इस व्याधि का एक ही इलाज है– शिक्षा। वह शिक्षा एवं स्वस्थ रक्त तरह समाज के शासन, विज्ञान, कला के क्षेत्र में नवीन प्रतिभाओं को भेजता है। शिक्षा ''जो प्रबुद्ध और मानवीय समाज के सृजन के लिए अनिवार्य मूल्यों में रुचि'' पैदा करता है।

## सन्दर्भ सूची

1. *साहिती सारिका,* त्रैमासिक (जुलाई–सितम्बर, 2008)
2. पुष्पा, मैत्रयी, *अलमा कबूतरी*।
3. वर्मा महादेवी, *शिक्षा के उद्देश्य,* ने. प. हा., नई दिल्ली।
4. त्यागी जी. एस., पाठक डी., *भारतीय समाज की सम–सामयिक समस्याएँ,* विनोद पुस्तक मंदिर।
5. कुमार राधा, *स्त्री संघर्ष का इतिहास,* अनुवाद/संपादन– रमाशकर सिंह 'दिव्य दृष्टि'।

********